International Journal Of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.2,Feb. 2013 **ISSN:-2320-2882**

ORIGINAL ARTICLE

रेडियो नाटक

हणमंतराव पाटील

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

सारांश

रेडियो के आविष्कार ने नाट्य साहित्य के स्वरूप विधान में बदलाव आया है । रेडियो के कारण ही दृश्य काव्य नाटक श्रव्य काव्य हो गया है । इस कारण नाट्यसाहित्य में रेडियो–नाटक नया स्वरूप विधान हो गया है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि नाटक जो रंगमंच पर अभिनीत किया जाता था वह आज रेडियो द्वारा प्रसारित कर श्रोताओं के कानों तक पहुँचाया जाता है ।

प्रस्तावना

रेडियो नाटक और रंगमंच नाटक दो भिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं । ''नाटकत्व की समनता को छोड़कर उनकी भिन्नता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इनमें शिल्पगत अंतर होता है ।''[1] रंगमंच नाटक दृश्य और श्रव्य होता है । इसके विपरीत रेडियो नाटक केवल श्रव्य होता है । फलतः रेडियो नाटक रंगमंच और उसकी सीमाओं से मुक्त होता है । रंगमंचीय नाटक में यह संभव नहीं होता कि किसी भी स्थान का और किसी भी प्रकार का दृश्य प्रस्तुत किया जा सके । लेकिन रेडियो नाटक में ध्वनि प्रभावों एवं संगीत के द्वारा कुछ ऐसे संकेत कर दिए जाते हैं कि श्रोता अपनी कल्पना शक्ति द्वारा उन दृश्यों का अनुमान कर सकता है । सफल रंगमंच के लिए संकलन–त्रय अनिवार्य माना जाता है । पर रेडियो नाटक के लिए यह तत्त्व आवश्यक नहीं होता । एक सफल रेडियो नाटककार प्रभावात्मकता को ध्यान में रखकर संकलन–त्रय का उल्लंघन भी कर सकता है । मनोवैज्ञानिक चित्रण भी रेडियो नाटक में अत्यंत प्रभावात्मक और सरलतापूर्वक अंकित किया जाता है । रेडियो नाटक में दृश्य परिवर्तन भी संगीत या ध्वनि प्रभाव द्वारा अत्यंत आसानी से सूचित किया जाता है । इन्हीं विशेषताओं के कारण रेडियो नाटक रंगमंच नाटक की अपेक्षा अधिक स्वच्छंद है । स्वगत कथन भी रेडियो नाटक में अच्छे लगते हैं ।

हिंदी के कुछ विद्वान रेडियो नाटक को रेडियो एकांकी तथा ध्वनि एकांकी कहते हैं । लेकिन यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि रेडियो नाटकों में अंक का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । रेडियो नाटक के लिए एकांकी तथा ध्वनि एकांकी कहने का शायद यही कारण है कि रेडियो नाटक का कलेवर अत्यंत संक्षिप्त होता है । एक सफल रेडियो नाटक बीस मिनट से लेकर एक घंटे तक का भी हो सकता है । इसमें आवश्यकतानुसार एक से लेकर अनेक दृश्य भी हो सकते हैं । ये दृश्य छोटे–बड़े दोनों होते हैं । आवश्ययकता को ध्यान में रखकर एक दृश्य पाँच पंक्तियों का भी हो सकता है और कभी–कभी पाँच सौ पंक्तियों का भी । इसके साथ ही तीन अंकों के रंगमंच नाटकों को भी रेडियो नाटक बनाकर प्रसारित किया जाता है । इससे यह स्पष्ट होता है कि रेडियो नाटक रेडियो एकांकी या ध्वनि एकांकी नहीं है ।

रेडियो नाटक को 'रेडियो एकांकी' तथा 'ध्वनि एकांकी' मानने का यह भी एक कारण है कि हिंदी में जितने भी लघु नाटक मिलते हैं वे रंगमंच के उचित अभाव के कारण रेडियो द्वारा ही प्रसारित किए जाते हैं । इतना ही नहीं तो कभी–कभी एक ही नाटक में दृश्य एवं श्रव्य संकेत भी मिलते हैं । जिसके कारण रंगमंचीय नाटक एवं रेडियो नाटक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । इसलिए हिंदी के प्रकाशित नाटकों को देखकर उनमें कौन से नाटक रंगमंचीय और कौन से नाटक रेडियो नटक है यह एक अत्यंत कठिन काम हो गया है ।

कुछ लोगों का कहना यह भी है कि रेडियो नाटक साहित्य नहीं है । यह कहना गलत है । यह सही है कि हिंदी में अपने मूल रूप में प्रकाशित रेडियो नाटक बहुत कम हैं । नाटककार प्रकाशित करते समय उनको रंगमंच संकेतों के आधार पर प्रकाशित करते हैं । कुछ लोगों की इस संबंध में यह एक भ्रांत धारणा होती है कि रेडियो नाटक केवल प्रसारण मात्र के लिए है और प्रसारण के बाद उसकी सार्थकता समाप्त हो जाती है । इस भ्रांत धारणा का जवाब है कि जैसे रेडियो नाटक साहित्य नहीं हो सकता वैसे ही रंगमंचीय नाटक भी साहित्य नहीं हो सकता । क्योंकि इन दोनों में प्रदर्शन के माध्यम में ही अंतर है । लेकिन इस अंतर को मिटाकर जब हम अंतर्मख होकर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि रंगमंचीय नाटक की अपेक्षा रेडियो नाटक की अपनी पाठ्य सामग्री हो सकती है । इसका कारण यह है कि रेडियो नाटक का रंगमंच शब्दों में ही निहित रहता है और उसके कारण पाठक के आनंद की क्षमता और अधिक होती है । इस कारण रंगमंच नाटक की अपेक्षा रेडियो नाटक का साहित्य अत्यंत प्रभावी होता है ।

रेडियो नाटक का मूल आधार ध्वनि है । रेडियो नाटक में ध्वनि द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है । इसलिए रेडियो नाट्य शिल्प को ध्वनि शिल्प भी कहा जाता है । रेडियो नाटक में भाषा–ध्वनि, ध्वनि प्रभाव, वाच्य ध्वनि इन तीन प्रकार की ध्वनियों का उपयोग किया जाता है । रेडियो नाटक में भाषा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह भाषा लिखित न होकर भाषित होती है । भाषा प्रवाह युक्त एवं सजीव होती है । रेडियो नाटक में भाषा का उपयोग संवाद के रूप में सबसे अधिक होता है । रेडियो नाटक में संवाद इसलिए महत्त्वपूर्ण होते हैं कि उनके सामने रंगमंच नाटको की तरह दर्शक नहीं होते । इस कारण संवादों द्वारा प्रत्येक स्थिति को स्पष्ट करना पड़ता है । कभी–कभी भाषा का प्रयोग रेडियो नाटक में नैरेशन के रूप में भी किया जाता है जिससे वातावरण निर्मित घटनाओं की शृंखला जोड़ना, आवश्यक घटनाओं का वितरण आने मना करने का किया जाता है । ऐसे पात्रों को रेडियो नाटक में नैरेटर, सूत्रधार कहा जाता है ।

ध्वनि प्रभाव रेडियो नाटक में सजीवता लाने हेतु किया जाता है । ध्वनि प्रभाव पर ही नाटक की सफलता अवलंबित होने के कारण रेडियो नाटक में इस तत्त्व की उचित उपयोगिता करना आवश्यक है ।

वाच्य ध्वनि का मतलब वाक्य संगीत होता है । रेडियो नाटक में यह एक अनिवार्य अंग है । रेडियो नाटक में बाह्य संगीत पृष्ठभूमि

Please cite this Article as : ***हणमंतराव पाटील*** **,** ***रेडियो नाटक*** **: International Journal Of Creative Research Thoughts (Feb. ; 2013)**

निर्माण करने में तथा दृश्य परिवर्तन करने में अत्यंत उपयोगी होता है । संवादों को प्रभावी बनाने में भी वाच्य संगीत का उपयोग किया जाता है ।

रंगमंच नाटक और रेडियो नाटक में नाट्य विषय में समानता होते हुए भी रेडियो नाटककार को कथानक निर्माण, चरित्र की ओर विशेष सतर्क रहना पड़ता है । रेडियो नाटक का कथानक अत्यंत गतिशील होता है । इसमें जितने भी दृश्य होते हैं वे सभी शृंखलाबद्ध और संतुलित होते हैं । कथानक अंततक श्रोताओं को आकृष्ट करनेवाला होता है । इससे अप्रासंगिक तथा विशृंखलाबद्ध दृश्यों को कोई स्थान नहीं होता । पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर भी रेडियो नाटककार को भी विशेष ध्यान देना पड़ता है । पात्र ऐसे हो कि श्रोता उनकी भाषा तथा शब्दों को अभिव्यक्त करने के ढंग के आधार पर ही पहचान सके ।

विषयवस्तु की दृष्टि से रेडियो नाटक के सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, काल्पनिक आदि अनेक प्रकार होते हैं । शिल्प की दृष्टि से रेडियो नाटक के सात प्रकार है – नाटक, रूपक फैंटसी, रेडियो–रूपांतर, मोनोलॉग, संगीत रूपक और झलकियाँ । रेडियो नाटक का कथानक रंगमंचीय नाटक की अपेक्षा अत्यंत सुसबद्ध एवं संतुलित होता है । रेडियो रूपक रेडियो नाटक की तरह विषयानुसार अपना रूप बदलता है । इसके माध्यम से किसी भी प्रधान बात का प्रसारण किया जाता है । इसके लिए कथानक और चरित्र की अनिवार्यत नहीं होती। फैंटसी अतिकल्पना प्रधान नाटक को कहते हैं । मोनोलॉग या एकपात्री नाटक में आद्यंत एक पात्र ही अभिनय करता है । झलकियों में विभिन्न लघु प्रकार के मनोरंजन प्रधान दृश्य प्रस्तुत किए जाते हैं । संगीत रूपक में गीतों की अधिकता होती है । रेडियो रूपांतर में रंगमंचीय नाटक या एकांकी, कहानी और उपन्यास आदि को रेडियो नाटक बनाकर प्रसारित किए जाते हैं ।

रेडियो नाटक का जन्म पाश्चात्य देशों में ही सर्वप्रथम हुआ है ऐसा माना जाता है । फरवरी 1923 को शेक्सपियर के 'जुलियस सीजर' के एक दृश्य को रेडियो पर प्रसारित किया गया था ।[2] इसके बाद कई नाटक प्रसारित किए गए । हिंदी में 1936 में ऑल इंडिया रेडियो के दिल्ली केंद्र से प्रसारित एक बंगला नाटक को यह श्रेय दिया जाता है । यह एक रंगमंचीय नाटक था जिसमें रंग संकेत तथा दृश्यांतर सभी रंगमंचीय ढंग के थे । प्रारंभिक हिंदी रेडियो नाटकों पर रंगमंच नाटकों का अधिक प्रभाव दिखाई देता है । प्रारंभिक प्रयोगों के बाद दस साल के बाद नाटककारों ने यह अनुभव किया कि रेडियो नाटक और रंगमंचीय नाटक इन दोनों का स्वतंत्र रचना विधान है। इस दृष्टि से आकाशवाणी द्वारा प्रसारित होनेवाला हिंदी का पहला सफल नाटक आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'राधाकृष्ण' कहा जाता है ।

स्वतंत्रता के पूर्व हिंदी में बहुत ही कम रेडियो नाटक दिखाई देते हैं । सन् 1947 के पूर्व आकाशवाणी के केंद्र भी बहुत कम थें । दिल्ली, लखनउ आदि जो केंद्र थे उनमें हिंदी की अपेक्षा उर्दू भाषी लोगों का अधिक महत्त्व था । इस कारण हिंदी रेडियो नाटकों का अभाव ही दिखाई देता है।

आज के रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटकों से बिल्कुल भिन्न प्रकार के दिखाई देते हैं । उपेंद्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट और रामकुमार वर्मा ने रंगमंचीय नाटकों के साथ ही साथ सफल रेडियो नाटकों का भी निर्माण किया है । विष्णु प्रभाकर, हरिश्चंद्र रत्नाकर, प्रभाकर माचवे, कर्तारसिंह दुग्गल, गिरिजाकुमार माथुर, अमृतलाल नागर आदि नाटककारों ने रेडियो नाटक लेख्न में अपनी ओर से अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

हिंदी में सफल रेडियो नाटकों का निर्माण बहुत ही कम दिखाई देता है । संख्या की दृष्टि से आज अनेक नाटक दिखाई देते हैं । लेकिन इन नाटकों में शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट नाटकों की संख्या बहुत कम है । रेडियो नाटकों की अपेक्षित प्रगति में जो कमी दिखाई पड़ रही है उसके मुख्यतः निम्नलिखित कारण हैं –

1. रेडियो नाटक के शिल्प की ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं । जिसके कारण संख्या में अधिक नाटक होकर भी नाट्य शिल्प की दृष्टि से सफल नाटक बहुत कम हैं ।
2. आकाशवाणी के केंद्रों की कमी भी रेडियो–नाटक की अपेक्षित प्रगति में बाधक है । एक नाटक को किसी आकाशवाणी केंद्र से प्रसारित करने के बाद दसरे केंद्र द्वारा वह प्रसारित किया जाएगा ही ऐसा कुछ निश्चित नहीं कह सकते । रंगमंचीय नाटक अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया जाता है । इस तुलना में रेडियो नाटक एक बार प्रसारित होने के बाद उसका महत्त्व कम होता है । इसलिए प्रतिभा संपन्न साहित्यकार रेडियो नाटक लिखने की अपेक्षा रंगमंचीय नाटक ही लिखते हैं ।
3. कभी कभी नाटककार 'एक पंथ दो काज' है कहावत सार्थक करते हैं । रेडियो नाटक के रूप में नाटक लिखते हैं और प्रकाशन के समय रंगमंच नाटक के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। जिसके कारण दिशा–निर्देशन करनेवाले सफल रेडियो नाटक अपने मूल रूप में कम दिखाई देते हैं । जिसके कारण रेडियो नाटक के विकास में बाधा पड़ती है ।
4. रेडियो नाटक शिल्प रंगमंच नाट्य शिल्प से भिन्न प्रकार की रचना है । हिंदी में रेडियो नाटक शिल्प पर प्रामाणिक निर्माताओं का अभाव भी खटकता है । जिसके कारण प्रतिभा संपन्न नये रेडियो नाटककार रेडियो तकनीक का गंभीर अध्ययन करते हुए रेडियो नाटक लिखते हैं। जिनमें शिल्प की दृष्टि से मौलिकता बहुत कम दिखाई देती है ।
5. हिंदी में जीवित रंगमंच परंपरा का अभाव दिखाई देता है । जिसके कारण प्रथम श्रेणी के रंगमंच नाटकों की कमी दिखाई देती है । गोविंद चातक के शब्दों में ''रंगमंच के अभाव में नाट्य लेखन कुंठित हो जाता है और नाट्य लेखन के अभाव में रंगमंच की क्षमताएँ उपयोग में आने से रह जाती है ।''[3] अभिनेय नाटकों की यह परंपरा भी सफल रेडियो नाटक के निर्माण में अवरोध का काम करती है ।

हिंदी में रेडियो नाटक की प्रगति संतोषजनक न होते हुए भी निराशाजनकर भी नहीं है। स्वाधीनता के बाद इस नए माध्यम का प्रारंभ हो गया था । आज अनेक नाटककार इस नए माध्यम का उपयोग कर संख्या की दृष्टि से अनेक नाटक लिख चुके हैं । इनमें से कुछ नाटक रेडियो शिल्प की दृष्टि से अत्यंत सफल रहे हैं । संख्या की दृष्टि से ये क्रम रेडियो नाटक ही इस नये माध्यम का दिशा निर्देशन कर भविष्य में हिंदी में श्रेष्ठ रेडियो नाटकों का निर्माण कर हमारा मनोरंजन कर सकने में समर्थ हो सकेगी, ऐसी हम आशा कर सकते हैं ।

संदर्भ संकेत :

1) प्रकाश और परछाई – विष्णु प्रभाकर, प्र.सं. पृ. 4
2) हिंदी एकांकी की शिल्प विधि का विकास – सिद्धनाथकुमार, सं. 1986, पृ. 298
3) रंगमंच कला और दृष्टि – गोविंद चातक, सं. 1998, पृ. 20